Integral Research (Peer-reviewed, Open Access & Indexed Multidisciplinary Journal) ISSN: 3048-5991
Journal home page: https://integralresearch.in/, Vol. 01, No. 06, August. 2024

हिंदी साहित्य में कथ्य संवेदना

डॉ. श्रीकांत मिश्र[♣]
सहा. आचार्य, हिन्दी
स्वामी शुकदेवानन्द कॉलेज
शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश

सारांश

इस पाठ में 'संवेदना' शब्द के अर्थ और प्रयोग पर चर्चा की गई है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से, 'संवेदना' शब्द 'वेदना' (पीड़ा) में 'राम' उपसर्ग जोड़ने से बना है, जिसका अर्थ है समान पीड़ा। *'दि न्यू डिक्शनेरी ऑफ सायकोलॉजी'* के अनुसार, मनोविज्ञान में संवेदना वह अवस्था है जो इन्द्रियों के उत्तेजित होने पर उत्पन्न होती है और जिसे तात्विक रूप से विश्लेषित नहीं किया जा सकता। साहित्य में 'संवेदना' का अर्थ मनोवैज्ञानिक अर्थ से भिन्न है। यहाँ 'संवेदना' का प्रयोग उन मनोदशाओं और अनुभूतियों के संदर्भ में किया जाता है जो लेखक की चेतना से जुड़ी होती हैं। साहित्यिक संवेदना, मन की प्रतिक्रियाओं की शक्ति को दर्शाती है, जिससे व्यक्ति दूसरों के सुख-दुख को समझता है और उनसे तादात्म्य स्थापित करता है। आचार्य शुक्ल के अनुसार, संवेदना का अर्थ सुख-दुखात्मक अनुभूति है। डॉ. देवी प्रसाद गुप्त ने साहित्यिक संवेदना को चेतनानुभूति की उस मनोदषा के रूप में बताया जो सृजन प्रेरणा और लोक-जीवन के प्रति आस्था पैदा करती है।

कूट शब्द: कथ्य संवेदना, **चेतना, मनोविज्ञान, समसामयिक जीवन, वेदना**

आधुनिक हिन्दी कविता में 'संवेदना' शब्द का प्रयोग काव्य की विषय-वस्तु अथवा विषय-चेतना के रूप में होने लगा है। व्युत्पत्ति मूलक दृष्टि से "विद्" धातु में "यु" प्रत्यय जोड़ने पर "यु" के स्थान पर "अन्" का आदेश हो गया फिर "ई" को युग करने से "वेदन्" शब्द निष्पन्न हुआ। तत्पश्चात् स्त्रीलिंग में "टाप" प्रत्यय जुड़ने पर "वेदना" शब्द बना।' "वेदना" शब्द का साधारण अर्थ पीड़ा होता है। फिर इसी "वेदना" शब्द में "राम" उपसर्ग जोड़ने पर "संवेदना" शब्द निष्पन्न हुआ। "राम" का अर्थ है समान और "वेदना" का अर्थ है पीड़ा। अर्थात् समान वेदना या पीड़ा ही "संवेदना" है। "दि न्यू डिक्शनेरी ऑफ सायकोलॉजी" में "संवेदना" के विषय में कहा गया है कि "चेतन की वह अवस्था जो किसी एक इन्द्रिय के उत्तेजित होनें पर उत्पन्न होती है और जिसका तात्विक विष्लेषण नहीं किया जा सकता, संवेदना है।"[2]

♣ Author: Dr Shrikant Mishra
Email: dr.shrikantmishra@gmail.com
Received 30 July 2024; Accepted 05 Aug 2024. Available online: 30 Aug 2024.
Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension)
This work is licensed under a Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License

मनोविज्ञान में "संवेदना" शब्द का जो अर्थ स्वीकृत हुआ है वह साहित्य में व्यवहृत "संवेदना" से भिन्न है मनोविज्ञान में "संवेदना" का समानार्थक संवेग है अथवा भावना है जबकि साहित्य में "संवेदना" शब्द अर्न्तमन की विभिन्न दुखमयी एंव सुखमयी अनुभूतियो का बौद्धिक प्रत्यक्षीकरण है और अब तो "संवेदना" शब्द काव्य की विषय-वस्तु के लिये रूढ़ हो गया है। काव्य अथवा साहित्य के सम्बन्ध में "संवेदना" शब्द सामान्यतः साहित्यकार की चेतनानुभूति की उस मनोदषा का पर्याय है। [3] डॉ० नगेन्द्र ने मनोवैज्ञानिक और साहित्यिक संवेदना अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिख है कि मूलतः "संवेदना" का अर्थ है- ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त अनुभव अथवा ज्ञान, किन्तु आजकल सामान्यतः इस शब्द का प्रयोग सहानुभूति के अर्थ में होने लगा है। मनोविज्ञान में इस शब्द का प्रयोग उसके मूल अर्थ में ही किया जाता है और उस अर्थ में वाह्य उत्तेजन के प्रति शरीर तन्त्र की सर्वप्रथम संचालन प्रक्रिया होती है। साहित्य में इसका प्रयोग स्नायुविक् संवेदनाओं की अपेक्षा मनोगत संवेदनाओं के लिये अधिक होता है। इस प्रकार साहित्यिक सन्दर्भ में संवेदषीलता मन की प्रतिक्रिया की शक्ति ही है, जिसके द्वारा संवेदनशील व्यक्ति दूसरे किसी व्यक्ति के सुख-दुख को समझकर उससे अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है। [4] आचार्य शुक्ल की दृष्टि में "संवेदना" का अर्थ सुख-दुखात्मक अनुभूति ही है।[5] डॉ० देवी प्रसाद गुप्त ने साहित्यिक संवेदना को स्पष्ट करते हुये लिखा है कि संवेदना का अभिप्राय अभाव की स्थिति या वेदना की विवृत्ति से न लेकर साहित्यकार की चेतनानुभूति की उस मनोदषा से लेना चहिये, जो उसे सृजन की प्रेरणा, रचना विधान की क्षमता और लोक-जीवन के प्रति आस्थावान बनाती है।[6]

संवेदना की उपरोक्त विभिन्न परिभाषाओं के अनुषीलन से यह निष्कर्ष निकलता है कि "संवेदना" मानव के अन्तष्चेतन्य की वह प्रतिक्रिात्मक शक्ति है जो हमारी भाव-प्रवणता और बौद्धिक चेतना के बीच एक पुल का कार्य करती है। यह न तो कोरा ज्ञान है और न कोरी भावना। वह इन दोनों के बीच की कड़ी है। वह सहानुभूति नही,

सह-अनुभूति है, क्योंकि सहानुभूति सिमटकर केवल दूसरों की पीड़ा की अनुभूति तक ही सीमित रह गयी है।

समीक्षा के अर्थ पर संवेदना के निम्नलिखित तत्व के निर्धारित किये जा सकते

हैं-

1. संवेदना सहअनुभूति है सहानुभूति नहीं।

2. संवेदना अनुभूति, अभिव्यक्ति नहीं।

3. संवेदना चेतना है, इतिहास नहीं।

4. संवेदना सूक्ष्म है, स्थूल नहीं।

5. संवेदना प्रतिक्रिया होती है, क्रिया नहीं।

6. संवेदना सृजन की प्रेरणा है, सृजन नहीं।

7. संवेदना शक्ति है, शक्तिवान नही।

मानव जन्मतः एक संवेदनषीलता है और कवि या कलाकार तो सामान्यजन की अपेक्षा कुछ अधिक ही संवेदनषील होता है। वह जिस परिवेष में जीता है, उस परिवेष की परिस्थितियाँ उसके अन्तर्मन पर निरन्तर अपना प्रभाव डालती रहती है। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से यह परिस्थितियाँ उसके अन्तर्जगत में गहरे बैठकर निरन्तर अपनी प्रकटीकरण का मार्ग खोजती रहती है और उचित अवसर आने पर वह कवि की प्रतिभा शक्ति द्वारा अर्थों की उंगली थामे शब्दो की पगडण्डियों पर निकलकर कविता के राजपथ पर जा खड़ी होती है। दूसरे शब्दो में मानव हृदय दृष्य परस्पर विरोधी भावनाओं का केन्द्र होता है। उसमें सुखमयी और दुखमयी अनुभूतियाँ निरन्तर संचित होती रहती हैं और अपने विकास का मार्ग खोजती रहती है। जब यही सुखमयी और दुखमयी अनुभूतियाँ हृदय की संकुचित सीमा को तोड़कर बाहर फैल जाना चाहती है तभी कविता या कला का जन्म होता है। समकालीन परिवेष की विभिन्न अनुभूतियाँ ही विभिन्न प्रकार की संवेदना को जन्म देती है। मोटे तौर पर संवेदना को पाँच भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है- 1. प्रेम संवेदना, 2. सामाजिक संवेदना, 3. आर्थिक संवेदना, 4. राजनीतिक संवेदना, 5. युगबोध तथा समसामयिक जीवन की अभिव्यक्ति।

प्रेम एक व्यापक भाव है। इसके अन्तर्गत प्रणय, वात्सल्य, देष-प्रेम आदि सभी आ जाते है। किन्तु काव्य में प्रेम संवेदना का अर्थ संकुचन करके उसे व्यक्तिगत प्रेम या प्रणय के रूप मे ही स्वीकारा गया है। भला ऐसा कौन मानव होगा जिसने जीवन में किसी से प्रेम न किया हो, उसने प्रेम के खट्टे मीठे अनुभव न किये हौं। प्रेम की यही भावना तो जायसी के हृदय में नागमती, सूर और मीरा के हृदय में कृष्ण अथवा गोपियाँ तथा मैथिलीषरण गुप्त के हृदय में यषोधरा बनकर बैठी है। कविवर सुमित्रानन्दन पंत ने तो यहाँ तक कह दिया है कि वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान, उमड़कर आँखों से चुपचाप, वही होगी कविता अन्जान। वास्तव में प्रकृति के जड़-चेतन सभी के इस प्रेम के इस अपार सागर में आकण्ठ हुये है तो फिर कवि जैसा सहृदय और संवेदनषील प्राणी इससे अपने को कैसे बचा सकता है। कदाचित् ही कोई ऐसा कवि होगा, जिसने अपनी कविताओं में न्यूनाधिक रूप में प्रेम का चित्रण न किया हो। छायावादी कविता में तो प्रेम कविता का एक प्रमुख तत्व रहा है। जयशकर प्रसाद का "आँसू' एक प्रकार से प्रेम या वेदना का ही काव्य है। महादेवी वर्मा "नीर भरी दुःख की बदली" बनकर अपने उस अज्ञत प्रियतम को सृष्टि के कण-कण में खोजती फिरती है। पन्त ने भी अपनी "ग्रन्थि" में शायद अपने जीवन की प्रेम-ग्रन्थि को ही खोला है। अस्तु, निष्कर्षतः कहा जा सकता है, कि प्रेम संवेदना कविता का एक प्रमुख विषय है।

काव्य में हमें यह प्रेम संवेदना दो रूपों में देखने को मिलती है-) लौकिक प्रेम-संवेदना के रूप में, 2) अलौकिक प्रेम संवेदना के रूप में। इन्हें लौकिक प्रेम-संवेदना और अलौकिक प्रेम-संवेदना भी कहा जा सकता है। पुनष्च, इनके दो भेद हो जाते है- 1. क) संयोग जनित लौकिक प्रेम संवेदना। ख) वियोग जनित लौकिक प्रेम-संवेदना। 2. क) ऐन्द्रिय-संयोग जनित अलौकिक प्रेम-संवेदना। ख) ऐन्द्रिय वियोग जनित अलौकिक प्रेम-संवेदना ।

संयोग जनित लौकिक प्रेम-संवेदना :

भोलापन यह देख चकित हो, मुख छवि खूब निहारी,

क्षण भर रहा निरखता इकटक, तन की दषा विसारी।

फिर एक ठण्डी साँस खींचकर दौड़ अधर चुम्बन ले,

ऊपर उठा लिया हाँथो पर, लगा लिया सीने से।। [7]

वियोग जनित लौकिक प्रेम-संवेदना :

मैं कर अतीत की यादें,

क्षण भर को रो लेता हूँ।

आँसू से अपने मन का,

गँदलापर धो लेता हूँ।। [8]

ऐन्द्रिय संयोग जनित अलौकिक प्रेम-संवेदना :

परस तुम्हारा प्राण बन गया,

दरस तुम्हारा श्वास बन गया।

विरह विलख कर अश्रु बन गया,

मिलन बिहँस कर हास बन गया।। [9]

ऐन्द्रिय वियोग अलौकिक प्रेम-संवेदना :

मैं पलको में पाल रही हूँ, यह सपना सुकुमार किसी का,

XXXX XXXX XXXX XXXX

मैं कण-कण में ढाल रही हूँ, आँसू के निस प्यार किसी का।।[10]

कवि जिस समाज में रहता है उसके क्रिया-व्यापारों की प्रतिक्रिया उसके मानस पटल पर अंकित न हो, यह नितान्त असम्भव है। अपने समाज में वह चारों ओर से क्रियायें-प्रतिक्रियायें ग्रहण करता है और फिर उन्ही की अनुभूति को अपने काव्य में अभिव्यक्त करता है। सामाजिक परिवेष की यही स्थूल और सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूतियाँ काव्य में समयानुकूल संवेदित होती रहती है। हिन्दी का वीरगाथा काल सामाजिक दृष्टिकोण से वृद्धों को युग था। परिणामतः तत्युगीन कविता में सामाजिक संवेदना के रूप में युद्धों को स्थान मिला। भक्ति-काल में समस्त भारतीय तन-मानस निराषा के गहन अन्धकार में डूबा हुआ अपने उद्धार के लिए परमपिता से आस लगाये बैठा था। परिणामतः उस सामाजिक संवेदना ने ही भक्ति आन्दोलन के रूप में अपने को कविता में प्रकट किया। रीतिकाल में सारा समाज विलासिता में डुबाया। परिणामतः रीतिकालीन कविता की समाजिक संवेदना विलासिनी और उन्मादी हो गयी। छायावादी युग में सामाजिक आन्दोलनों और स्वतन्त्रता संग्राम को सामाजिक रूप में मुखर होने का अवसर मिला। पुनष्च वर्तमान युग में समाज की तीन बड़ी आवष्यकतायें है- रोटी, कपड़ा और मकान। परिणामतः यही कविता के विषय बन कर रह गये, कहने का तात्पर्य यह है कि सामाजिक-संवेदना हर युग में अपने युग के अनुरूप ही बदलती रही है। हिन्दी कविता के किसी भी युग में राजनीतिक संवेदना उतनी नहीं हुई, जितनी कि स्वातन्त्र्योत्तर युगीन कविता में हुई है। विगत कालों में दबे ढके रूप में भले ही कहीं इसे सर उठाने का अवसर मिला हो, क्योंकि विदेषी आक्रान्ताओं से आतंकित यह वैसे ही अपना सर छुपाती फिरती थी, छायावादी युग में राजनीतिक संवेदना ने यन्त्र-तन्त्र कविता के वातायनों से झोंकना प्रारम्भ कर दिया था। प्रगतिवादी युग में घर से निकल कर दरवाजे पर आयी और आज तो यह गलियों और सड़को पर कहीं जूड़ा बाँध तो कहीं जूड़ा खोले घूम रही है। इसका कारण यह है कि आज हर आदमी के जीवन से जुड़ चुकी है। चूल्हे से लेकर चौपाल तक, शहर से लेकर गाँव तक सब जगह राजनीति ही राजनीति है। प्रजातन्त्र में हर व्यक्ति को अपने भाव-प्रकाषन की स्वतन्त्रता होती है। अतः राजनीति मानव जीवन का एक अनिवार्य अंग बन गयी है। परिणामतः आज के रचनाकारों ने भी राजनीतिक संवेदनायें ग्रहण कर उन्हें अपनी लखनी का स्पर्ष देकर काव्य में अधीष्ठित कर दिया है। कहना अनुचित होगा कि आज राजनीति हमारे जीवन से इतनी जुड़ चुकी है कि राजनीतिक संवेदना आज की कविता का मुख्य विषय बन गयी है। क्योंकि लोकतान्त्रिक राजनीति में विसंगतियों और विद्रूपताओं का ही बोल-बाला होता हैं अतः आज की कविता में भी रचनाकारों ने राजनीति के इसी पक्ष को अधिक उभारा है।

आर्थिक संवेदना प्रमुख रूप से आधुनिक कविता का विषय है। वीरगाथा काल, भक्तिकाल, रीतिकाल और छायावादी कविता में यह देखने को नहीं मिलता है। वास्तव में आर्थिक संवेदना का जन्म प्रगतिवादी कविता में होता है क्योंकि प्रगतिवादी कविता का जन्म ही पूंजीवादी के विरोध में हुआ। शासकों द्वारा शासितों का आर्थिक शोषण ही एक प्रतिक्रिया के रूप में प्रगतिवादी कविता में फूट निकला, तब से लेकर प्रयोगवादी कविता, नयी कविता, अकविता, अस्वीकृत कविता और यहाँ तक कि हिन्दी-गज़ल में वह एक सशक्त संवेदना बन गयी है। स्वातंत्र्योत्तर काल में देश के आर्थिक ढाँचे को सुधारने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से विभिन्न कार्यक्रम चलाये गये, पर ज्यों-ज्यों दवा दी गयी, त्यों-त्यों मर्ज बढ़ता गया। धनी और धनी होते चले गये, निर्धन और निर्धन हो गये। तथी तो आर्थिक संवेदना की अभिव्यक्ति के रूप में आ सके। कवि के मुँह से सहसा निकल पड़ा-

कल नुमायश में मिला वो, चीथड़े पहने हुए,

मैंने पूछा नाम, तो बोला कि हिन्दुस्तान हूँ।[11]

उसी आर्थिक विपन्नता को महाप्राण निराला ने अपनी कविता "वह तोड़ती पत्थर" में अभिव्यक्त किया है। आर्थिक विपन्नता की प्रतिक्रिया स्वरूप ही प्रगतिवादी कविता से लेकर हिन्दी की ग़ज़ल शैली तक यह आर्थिक स्पंदित हुई है।

संवेदना के उपर्युक्त प्रकारों के सम्बन्ध में यह बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि संवेदना के उपर्युक्त प्रकार संवेदनाओं के प्रकारों की अन्तिम रेखा नहीं हैं। वास्तव में मानव हृदय के संवेदनाओं की कोई सीमा निश्चित नहीं। उपर्युक्त प्रकारों के अतिरिक्त भी संवेदनाओं के और भी अनेक प्रकार हो सकते हैं। सच तो यह है कि संवेदनाओं के निश्चित प्रकारों का निर्धारण संभव ही नहीं है। और न ही कोई संवेदना नितांत रूप से एकाकी ही कही जा सकती है। सामाजिक संवेदना के साथ आर्थिक संवेदना भी जुड़ी हुई हो सकती है, आर्थिक संवेदना के साथ राजनीतिक संवेदना का भी मेल हो सकता है। अधिकांश संवेदना सम्गुफित रूप में ही प्रकट होती है। एक संवेदना से दूसरी, दूसरी से तीसरी जुड़ी रहती है अतः मोटे तौर पर ही संवेदना के प्रकारों की बात कही जा सकती है, उसके भेदों का सूक्ष्म और अन्तिम निर्धारण नहीं किया जा सकता।

संन्दर्भ

1. श्रीमती मंजुलता पुरोहित, नई कविता संवेदना और शिल्प, पृ० 23 ।
2. फिलिप लॉरेन्स हरीमेन, दि न्यू डिक्शनरी और साइकोलॉजी, पृ० 303।
3. श्रीमती मंजुलता पुरोहित, नई कविता संवेदना और शिल्प पृ० 25 ।

4. डॉ नगेन्द्र, मानव की परिभाषिक कोष-साहित्य खण्ड, पृ० 232 ।

5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 691-92 |

6. डॉ देवी प्रसाद गुप्त, साहित्यः सिद्धान्त और समालोचना, पृ० 22 1

7. गुरुभक्त सिहं, नूरजहाँ, पृ० 22 ।

8. राम प्रकाश पाल, पथिक वेदना, पृ० 49 ।

9. डॉ सुधा सक्सेना, नीरज व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ० 47 ।

10. महादेवी वर्मा, दीपशिखा, पृ० 124 ।

11. दुष्यन्त कुमार, साये में धूप, पृ० 57 ।